Artistic Narration, Vol. IX, 2018, No. 1: ISSN (P) : 0976-7444 (e) : 2395-7247 Impact Factor 6.5133 (SJIF)
UGC Approved Journal No. 43285

भारतीय मूर्तिशिल्प इतिहासः एक दृष्टि

डॉ0 अर्चना रानी*, पिंकी वर्मा**

* *विभागाध्यक्षा, चित्रकला विभाग, रघुनाथ गर्ल्स (पी0जी0) कॉलिज मेरठ,*

** *शोधार्थी, चित्रकला विभाग, घुनाथ गर्ल्स (पी0जी0) कॉलिज मेरठ*

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ0 अर्चना रानी, पिंकी वर्मा,

भारतीय मूर्तिशिल्प इतिहासः एक दृष्टि,

Artistic Narration 2018, Vol. IX, No.1, pp. 1-8

http://anubooks.com/?page_id=485

सारांश

भारत में एक दीर्घ मूर्तिकला परम्परा के दर्शन होते हैं। यहाँ विभिन्न अवसरों व पर्वों पर विभिन्न देवी देवताओं की पूजा अर्चना की जाती हैं। भारतीय मूर्तिकला परम्परा की खोज नवपाषाणिक संस्कृतियों में की जा सकती हैं, हालांकि पुरातात्तिवक दृष्टि से विकास के निरन्तर लम्बे प्रक्षेप पथ की तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से आगे खोजा जा सकता हैं। भारतीय कला के इतिहास को जानने के पश्चात यही कहा जा सकता है कि कला वास्तव में ईश्वर की रचना ही हैं। माना जाता है कि शिव से नृत्य एवं संगीत कला का उद्भव, विष्णु से चित्रकला एवं मूर्तिकला उत्पन्न हुई व रूद्र विश्वकर्मा से वास्तुकला उत्पन्न हुई। भारतीय मूर्तिकला अधिकांशतः यथार्थ जगत से जुड़ी हुई हैं इसके प्रमाण सिंधु घाटी की सभ्यता में देखने को मिलते है। मूर्ति बनाने के लिये उस समय कलाकारों ने गोबर, मिट्टी, पत्थर, ताँबा, पीतल अनेक वस्तुओं का प्रयोग किया। इस प्रकार विभिन्न शैलियों व विभिन्न कालों से गुजर कर नवीन विचार ग्रहण करती हुई भारतीय मूर्तिकला आज भारत में ही नही विश्व में एक निश्चित स्थान बना चुकी हैं।

संकेत शब्दः *मूतिशिल्प, अभिव्यक्ति, मौर्य, कुषाण, गुप्तकाल, धार्मिक, सभ्यता।*

डॉ0 अर्चना रानी, पिंकी वर्मा

प्रस्तावना

कला मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है इसके अभाव में जीवन नीरस प्रतीत होगा। भारत अनेक कलाओं का देश है जहाँ अनेक ललित कलाओं ने अपना अस्तित्व उच्च पायदान पर प्राप्त किया। कला कोई भी हो वह मानव अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन मानी जाती है। नृत्य कला, काव्य कला, चित्रकला, वास्तुकला के साथ साथ मूर्तिकला इस कार्य में सार्थक सिद्ध हुई है। अन्य कलाओं की भाँति ही भारतीय मूर्ति कला भी अत्यन्त प्राचीन कला है अगर हम पाषाण काल की बात करें तो जब आदि मानव हर प्रकार की कलात्मक एवं रचनात्मक क्रिया से अनभिज्ञ था उस समय भी मानव ने अपनी सृजनात्मक शक्ति के बल पर पाषाण उपकरणों को काट छाँटकर नवीन आकृति प्रदान की व अनेक पाषाण मोहरों व मूर्तियों का सृजन किया।

कला एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है जो मनुष्य की सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों एवं मनोभावों को चैतन्य स्तर पर ले जाती है। जिससे मनुष्य को कुछ नवीन कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। कलाएँ मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है। ललित कलाएँ एवं उपयोगी कलाएँ। ललित कला के अन्तर्गत पाँच कलाएँ आती है– चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य या वास्तुकला, संगीत कला एवं काव्यकला जो हमारी ज्ञानेन्द्रियों को आनन्द का अनुभव कराती हैं। इन सभी कलाओं में मूर्तिकला का अपना मुख्य स्थान है। भारतीय मूर्तिकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। इसका विकास मानव सभ्यता के साथ ही आरम्भ माना जाता है। प्रारम्भिक प्रस्तर युग की बात अगर की जाये तो उस समय मानव वनों में रहकर अनगढ़ पत्थरों के औजार एवं हथियार बनाकर उनकों उपयोग में लाता था। मध्य प्रस्तर युग में मानव नें विभिन्न प्रकार के नुकीले व धारदार पत्थरों के औजारों को प्रयोग में लाना व बनाना प्रारम्भ कर दिया था। नव प्रस्तर युग में मनुष्य ने मिटटी के पात्रों का हाथ से निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया था। काँस्य युग में मनुष्य ने वैदिक क्षमता के आधार पर चाक पर बर्तन बनाने जैसे अतुल्यनीय कार्य को कर दिखाया। ऐसे अनेक अज्ञात कलाकार है जिन्होंने भारतीय मूर्तिकला में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसे अज्ञात कलाकारो की संरचनात्मकता का काल लगभग आठवीं शताब्दी तक का है लगभग वही समय जब शिल्पशास्त्र का उदय हुआ और हिन्दु धर्मादर्शन को एक दृश्यात्मक भाषा प्रदान की गई। मूर्तिकला के क्षेत्र में उसी समय एक ऐसी शैली ने जन्म लिया होगा जो मुखर आकृतियों तथा डिजाइनों में अत्यन्त निपुण तार्किकता पर आधारित होगी। सजीव तथा इन्द्रिय विषयक विधि जिनके रूप चिकने पूर्ण पृष्ठाकार आकृतियों पर आधारित है वह उसी मौलिक शैली की शक्ति है और परम्परागत भारतीय मूर्तिकला को एकता और विषेशता प्रदान करती है। कला में शैली एक अमूल्य वस्तु है क्योंकि वह कलाकार को दुविधा की स्थिति से अलग रखती है और कौशल की खोज प्रदान करती है।[1] भारतीय कला का उपयोग पूजा आदि धार्मिक कार्यों एवं उद्देश्यो की पूर्ति हेतु किया जाता है। इस प्रकार यदि यह कहा जाये कि कला का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक एवं धार्मिक रहा है तो कोई अतिश्योक्ति न होगी।

भारतीय सभ्यता के इतिहास का अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि भारत में मूर्तिकला एवं वास्तुशिल्प की जड़े बहुत गहराई तक फैली हुई है। ऋग्वेद में एक जगह खोखली मूर्ति की चर्चा है जिससे उस समय खोखली कास्टिंग का अनुमान लगाया जा सकता है भारतीय मूर्तिकला की प्रगति एवं प्रोत्साहन में हिन्दु बौद्ध तथा जैन धर्मो का एक विशेष ऐतिहासिक योगदान है।[2] भारतीय मूर्तिकला

आरम्भ से ही यथार्थ रूप लिये हुए है जिसमें कलाकार ने जीवित मानवकृतियों में प्रायः लचीले अंगो जैसे पतली कमर, नितम्ब एवं एक तरूण एवं अति संवेदनापूर्ण रूप को चित्रित कर अतुल्नीय कार्य किया है। भारतीय मूर्तिकला में कलाकार ने पेड़–पौधे, जीव–जन्तुओं से लेकर अंसख्य देवी–देवताओं को चित्रित किया है। ताँबे के पत्रो को काटकर बनायी गई आकृतियो के बाद ही मूर्तिकला का श्री गणेश हो जाता है। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों दो ऐसे स्थान है जहाँ यह सभ्यता खूब फली–फूली, यही से अनेक अतुल्यनीय मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। इसमे हड़प्पा सभ्यता का विकास 2500 ई0 पू0 के लगभग से 1100 ई0 पू0 के लगभग माना जाता है। यहाँ से पशुपति मुद्रा, वृषभ मुद्रा श्रृंग मुद्रा के अतिरिक्त पुरूष की आवक्ष मूर्ति, नर्तक की मूर्ति, पुरूष धड़, नर्तकी की धातु मूर्ति आदि प्राप्त हुए है। ये इन मूर्तियों को बनाने के लिये मिट्टी, गोबर, पत्थर आदि का प्रयोग करते थे। भारत में धातु मूर्ति प्रचलन भी शुरू हो गया था। भारत, नेपाल, बर्मा, थाईलैण्ड, लंका के कारीगर मिट्टी, गोबर तथा धान की भूसी का तो मुख्य रूप से प्रयोग करते, लेकिन कहीं–कहीं घोडे की लीद, बाजरे की भूसी, बालू, बकरी की लेड़ी, हरी घास की पत्ती आदि का भी प्रयोग होता हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मोल्ड बनाने के लिए लोग विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग करते है जापान के कारीगर ऊन, लकड़ी के बुरादे का भी इस्तेमाल करते है। पुराने जमाने के मिश्र के कारीगरों ने गधे की लीद का भी प्रयोग किया है। मेक्सिकों के कारीगर मिट्टी में कोयले के चूर्ण मिलाते है। पश्चिमी अफ्रीका के लोग मिट्टी में बकरी के बाल व कोयले का प्रयोग करते है। मोल्ड को पकाने का ढ़ंग भी अलग–अलग जगह पर अलग–अलग होता है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में ढ़लाई प्रथा वैदिक युग से ही प्रचलित है और यहाँ की प्रथा का ही प्रभाव बर्मा, लंका, सियाम(थाइलैंड), नेपाल, कम्बोडिया इण्डोनेशिया, वियतनामा आदि देशों में भी पड़ा है। इस तरह यह बात गौरव के साथ की जा सकती है [3] कि भारतीय ढलाई कला प्राचीन युग से निरन्तर चली आ रही है। इसके अतिरिक्त वैदिक युग, शैशुनाक तथा नन्दकला ने भी मूर्ति के इतिहास में अपना एक स्थान बनाया है। शैशुनाक तथा नन्दकला का समय 727 ई0 पू0 से 325 ई0पू0 तक माना जाता है। मूर्तिकला की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण समय था। भारत में अब तक ऐतिहासिक काल की जो मूर्तियाँ मिली है वे मगध के शैशुनाक वंश के कुछ राजाओं की है यही व समय था जब जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ भी बनने लगी थी।

मौर्य काल भी मूर्तिकला जगत में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वास्तव में मौर्य काल कलाओं के विकास के लिये बहुत ही अनुकूल था क्योंकि इस काल में वास्तुकला एवं मूर्तिकला दोनों की उन्नति समान रूप से हुई। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने इन्हें संरक्षण प्रदान किया वह इनका विशेष संरक्षक था। उसने देश के अनेक भागों में स्तम्भ निर्मित कराये। इस प्रकार के 13 स्तम्भों का पता चला है और इन पर अशोक के लेख खुदे हुए हैं। ये स्तम्भ अशोक कालीन मूर्तिकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है और विश्व की उत्कृष्ट कला–कृतियों में इनका स्थान है।[4] मौर्य कालीन कला की एक महत्वपूर्ण कृति मौली का हाथी हैं। चट्टान को काटकर इस हाथी का निर्माण किया गया था । मौर्य कालीन स्तम्भों के लिए दो प्रकार के पत्थरो का प्रयोग होता था–चित्तीदार लाल व सफेद बलुआ पत्थर, जो मथुरा के आस पास निकलता है एवं पीले रंग का चुनार पत्थर, जो वाराणसी के पास मिलता है। मौर्यो ने बिहार की बरोबर (Barobar) की पहाडियों में कई गुफाओं का निर्माण किया था। इसका उपयोग 'आजीवक'

धर्मावलम्बी रहने के लिये करते थे। इनके भीतर शीशे के समान पालिश की गई थी। इन गुफाओं की कटाई तत्कालीन काष्ठ संरचनाओं के समान है। इसमें लोमष ऋषि की गुफा प्रसिद्ध है। इस गुफा का दरवाजा बिल्कुल लकड़ी के दरवाजों की तरह काटकर बनाया गया है।[5] शुंग राजा ब्राहमण थे अतः उनके शासन काल में बौद्ध तथा जैन कला के साथ साथ ब्राहमण धर्म से सम्बन्धित कला की भी उन्नति हुई। ब्राहमणों में उस समय मूर्ति–पूजा भली–भाँति प्रचलित थी। उस समय के प्रसिद्ध विद्वान पंतजलि ने शिव, स्कन्द और विशाख की मूर्तियों की रचना तथा विक्रय और कृष्ण लीला के चित्रों की प्रदर्शनी की चर्चा की है। इस युग का एक पंचमुखी शिवलिंग भीटा में मिला है। एक अन्य शिवलिंग दक्षिण के गुडिमल्लमू नामक स्थान पर भी प्राप्त हुआ है। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि उस समय शिव पूजा प्रचलित थी।[6] भारत में अब तक ऐतिहासिक काल की दृष्टि से जो सबसे प्राचीन मूर्ति प्राप्त हुई है वो मगध के शैशुनाक वंश (727–366 ई0पू0) के राजाओं की हैं। वास्तव में भारतीय मूर्तिकला का आरम्भिक युग प्रागैतिहासिक काल से शुंगकाल तक का समय माना गया है। भारतीय मूर्तिकला की प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार है– सिन्धु घाटी सभ्यता की मूर्तिकला, मौर्य मूर्तिकला, मौर्यत्तर मूर्तिकला, गांधार कला की मूर्तियाँ, मथुरा कला की मूर्तियाँ, अमरावती मूर्तिकला, गुप्तकाल मूर्तिकला, वाकाटक मूर्तिकला, मध्यकाल मूर्तिकला, चोल मूर्तिकला, आधुनिक मूर्तिकला।

कुषाण साम्राज्य में निर्मित मूर्तियाँ मूर्तिकला का अदभुत उदाहरण है। साम्राज्यवाद का कुषाण युग, इतिहास का एक महानतम आन्दोलन रहा है, यह उत्तर पूर्वी भारत तथा पश्चिमी पाकिस्तान (वर्तमान अफगानिस्तान) तक फैला था। ईसवीं की पहली शताब्दी से तीसरी शताब्दी के बीच कुषाण एक राजनीतिक सत्ता के रूप में विकसित हुए और उन्होनें इस दौरान अपने राज्य में कला का बहुमुखी विकास किया। भारतीय कला जगत का परिपक्व युग यहीं से प्रारंभ होता है। यह युग 50 ई0पू0 से 300 ई0पू0 तक रहा है। गान्धार मूर्तिकला शैली की मुख्य एवं महत्वपूर्ण उत्कृष्ट मूर्ति बुद्ध की एक योगी के रूप में बैठी हुई मुद्रा वाली प्रतिमा है। इस मूर्ति को देखकर एक आध्यात्मिक शक्ति का आभास होता है उनके सन्यासी वाली वेशभूषा एक अलग ही आभा बिखरे रही है। उनकी बड़ी बड़ी आँखे, ललाट पर तीसरे नेत्र और सिर पर उभार देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे सब सुन रहे और कुछ समझ रहे है। बौद्ध विषय वस्तु की इस शैली पर यूनानी प्रभाव था।

मथुरा शैली भी गांधार शैली की भाँति कुषाण काल में मूर्तिकला का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। ई0पू0 द्वितीय शती से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक उत्तरी भारत में स्थापत्य कला व मूर्तिकला के मुख्य केन्द्र के रूप में मथुरा ने अपना एक विशेष स्थान बना लिया था। ईसा की प्रथम तीन शताब्दियाँ मथुरा शैली मूर्तिकला का स्वर्णिम काल कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। मथुरा जैन धर्म भी महत्वपूर्ण केन्द्र रहा हैं। यहाँ के कंकाली टीले से खुदाई में जैनियों के विशाल स्तूप के अवशेष प्राप्त हुए है। इन अवशेषों से प्राप्त आयाग–पट्ट विशेष महत्वपूर्ण है। आयाग–पट्ट प्रस्तर खंड होता है, जिस पर तीर्थंकरो की तथा अन्य पूज्य आकृतियाँ खुदी होती थी। इन प्रस्तर खण्डों को मन्दिर में रखा जाने लगा। पहले आयाग पट्टो में प्रतीको का अंकन किया जाता था। इनमें श्रीवत्स, त्रिरत्न, स्वास्तिक, मीन, मिथुन, वैजयन्ती आदि उकेरे जाते थे। कला की दृष्टि से लखनऊ संग्रहालय का आयाग–पट्ट विशेष महत्व का है। कंकाली टीले के दूसरे स्तूप से तीर्थकरों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। ये प्रतिमाएँ चार प्रकार

की है–

1) खड़ी हुई या कायोत्सर्ग मुद्रा,

2) पद्मासन में आसीन मूर्तियाँ,

3) सर्वतो भद्रिका (चौमुखी मूर्तियाँ),

4) सर्वतो भद्रिका बैठी हुई मुद्रा।[7]

मथुरा में ब्राहमण धर्म से सम्बन्धित अनेक मूर्तियों को भी बनाया गया। इनके साथ ही महायान बौद्ध धर्म के नये आदर्शो ने तत्कालीन मूर्ति शिल्पकारों को प्रेरित किया था। पुरात्व शास्त्रियों के अनुसार बुद्ध मूर्तियों का निर्माण इस शैली के कालाकारों का महान योगदान है इन मूर्तियों में प्रयुक्त पत्थर सफेद–लाल था, जो शताब्दियों तक अपनी उत्कृष्ट कलात्मक गुणवता के रूप में विद्यमान रहा। यह सफेद चित्तीवाला लाल रवादार पत्थर सीकरी, भरतपुर आदि की खदानों से प्राप्त हुआ है।

यक्ष यक्षियों, वृक्षिका, अमरयुग, क्रीडादृश्य, मन्दिरों, विहारो एवं स्तूपों के और उनकी वेष्टनियों के भिन्न भिन्न अवयवों के साथ साथ अब मूर्तियों के विषयो में बुद्ध की खड़ी हुई तथा पद्मासन प्रतिमाएँ भी सम्मिलित हो जाती है। इन सब मूर्तियों में कहीं भी गांधार छाया नही मिलती। श्रृंगार–रस–प्रधान मूर्तियों की भावभंगी तथा अंग प्रत्यंगो में वही अत्युक्ति है जो पहले से चली आती है। बुद्ध मूर्ति में भी कही से उस वास्तविकता का दर्शन नही होता जो गांधार वालो ने अपनी कृतियों में उस समय मढना चाहा है। एक बात और ध्यान देने की है। कुषाण कालीन मथुरा की बुद्ध व बोधिसत्व मूर्तियों में अधिकांश खड़ी मूर्तियाँ हैं, जिनकी अतिरिक्त ऊँचाई तथा शैली स्पष्ट रूप से शैशुनाक मूर्तियों व खडी जैन मूर्तियों की है।[8] इन मूर्तियों में कही भी अश्लीलता अथवा कामोत्तेजना की भाव भंगिमा नही दिखाई देती है भारतीय कला के इतिहास, मथुर की कुषाण कला में इसलिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसने प्रतीकवाद और मूर्ति शिल्पवाद को अपनाया और बाद में उसे स्वीकार कर लिया। उदाहरण के लिये, पहली बार मथुरा में देवी–देवताओं की मूर्तियो की रचना की गई। बुद्ध मूर्तियों का प्रभाव चारों ओर फैला और चीन के कला केन्द्रों तक पहुँचा।

जिस समय भारत में गांधार–शैली और मथुरा शैली का बोलबाला चारों ओर हो रहा था उसी समय दक्षिणी भारत में आंध्रप्रदेश के गन्तूर जिले में अमरावती कला शैली का उद्भव हुआ। अमरावती मूर्तिकला की एक प्राचीन मूर्तिकला शैली है, जो दक्षिण–पूर्वी भारत में लगभग दूसरी शताब्दी ई0पू0 से तीसरी शताब्दी ई0पू0 तक सातवाहन वंश के शासन काल में फली फूली। यह अपने भव्य उभारदार भित्ति चित्रों के लिये जानी जाती है, जो संसार में कथात्मक मूर्तिकला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। अमरावती में चित्रांकन की दोनों विधियाँ एक ही फलक पर साथ साथ दिखाई देती है। एक मूर्तरूप, जिसमें बैठे या खड़े हुए बुद्ध की प्रतिमा दिखाई देती है। दूसरी अमूर्त या प्रतीकात्मक रूप, जिसमें बुद्ध की उपस्थिति का प्रतीक खाली सिंहासन है।

गुप्त शासन काल को भारतीय कला इतिहास में महत्वपूर्ण माना जाता है। इसे स्वर्ण युग की संज्ञा दी गई है। यही वह समय था जब भारतीय शिल्पियों ने मूर्तिकला के क्षेत्र में शैली, भाव प्रदर्शन व संरचना आदि में विशिष्टता प्राप्त की। यह काल वास्तव मे मूर्तिकला के उत्कर्ष का काल था। गुप्त

कला में आकृतियों का माधुर्य और मण्डन की शोभा का जैसा नपा–तुला समन्वय हुआ है वैसा कभी नही देखा गया। कला सौन्दर्य की प्रतिमा बनने के साथ साथ आत्मशक्ति को संचालित करने वाले आदर्शों की प्रतीक बन गयी। गुप्त कला में से कुषाण काल का भारीपन निकल गया। उसका रूप कट–छँट कर अत्यन्त सन्तुलित और आकर्षक बन गया। आकृतियों में स्फूति–युक्त दृढ़ता आयी। पुरूषों के केश कन्धों तक लटकने लगे।[9]

वाकाटक कला का भी भारतीय मूर्तिकला इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। वाकाटक वंश (300 से 500 ई0 लगभग) सातवाहनों के उपरान्त दक्षिण की महत्वपूर्ण शक्ति के रूप मे उभरा। उत्तर भारत में जिस समय गुप्त राजाओ का आधिपत्य था उसी समय दक्षिण में वाकाटकों का राज्य था। एलीफेन्टा अजन्ता की गुफाओं मे मिलने वाली मूतियाँ इसी समय गढ़ी गई थी। वाकाटक राजा शैव थे। अतः उनके समय में शैव धर्म से सम्बन्धित विषयों पर आधारित मूर्तियाँ ही अधिक बनी। वाकाटक मूर्तिकला के पश्चात् मध्य काल हमें कहीं कहीं पर गुप्त कला के कुछ तत्व अवश्य देखने को मिलते है। परन्तु इनके साथ ही इस समय की कला में कुछ नवीन परिवर्तन भी अवश्य आ गये। कला शिल्पियों ने विभिन्न पौराणिक घटना का चित्रण करना प्रारम्भ कर दिया था तथा अब देवी–देवताओं की छवियों को स्वततन्त्र प्रतिमा में अंकित करना प्रारम्भ हो गया था। परन्तु कला शिल्पियों ने इन छवियों को पर्वतों एवं गुफाओं में विशाल दृश्यों को उत्कीर्ण करके जो कला परिचय प्रस्तुत किया है वह अद्वितीय है। गुप्त काल को राजनैतिक दृष्टि से स्वर्ण युग की संज्ञा दी जाती है परन्तु इसके पश्चात् राजनैतिक विघटन एवं हास होना प्रारम्भ हो गया। तथापि यह काल विज्ञान धर्म, कला, विज्ञान, चिकित्साशास्त्र व गणित आदि के उत्कर्ष का काल रहा है। यही वह समय था जब केन्द्रीय शक्ति के अभाव मे विभिन्न क्षेत्रों में स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना होने लगी। इनमें तीन राजवंश–पाल, गुर्जर–प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट प्रमुख थे। राजनैतिक बिखराव के इस काल में भारतवर्ष में जिन कला केन्द्रों में एवं जिन राजवंशो के द्वारा स्थापत्य तथा मूर्तिकला को संरक्षण दिया गया, उनके प्रमुख नाम इस प्रकार है–

राजकूट राजवंश – मान्यखेर, पल्लव राजवंश – कांची, गुर्जर प्रतिहार राजवंश – कन्नौज, पाल राजवंश – बंगाल, बिहार, चन्देल राजवंश – बुन्दलखण्ड, भौमकर, सोम एवं गंग राजवंश – उडीसा (कलिंग), चोल राजवंश – तन्जौर, परमार राजवंश – मालवा, चालुक्य राजवंश – बादामी, अरहोल पद्दतकल, होयसल राजवंश – हलैबिड, पांड्य–चेर राजवंश – मदुराई, अन्य राजवंश – काकतीय विजयनगर।

धार्मिक दृष्टिकोण से सातवीं शती तक बौद्ध धर्म की प्रमुखता रही। उसके बाद यह पूर्वी भारत तक सीमित रह गया।[10] वास्तव में मूर्ति व वास्तु कला की दृष्टि से यह भी स्वर्ण युग कहा जाता है। इस युग में अनेक विश्व प्रसिद्ध मन्दिरों व भवनों के साथ–साथ मूर्तियों का निर्माण भी किया गया। दिलवाडा, कोणार्क, खुजराहो, एलोरा, तन्जौर, हम्पी, सोमनाथ, पुरी, भुवनेश्वर कांचीपुरम आदि के मन्दिर के साथ–साथ मूर्तियाँ हमारी भारतीय मूर्तिकला व वास्तुकला के साक्षी के रूप में उपलब्ध है। 14 वीं से 19 वीं शताब्दी तक का समय भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में काफी उथल–पुथल भरा हुआ है। भारत में इस समय मुस्लमानो के कई बार आक्रमण हुए जिनके फलस्वरूप मूर्तिकला एवं मन्दिरों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया तथा उनको क्षति पँहुची। परन्तु 15 वीं शताब्दी में महाराजा कुम्भा जो कि मेवाड़ के राजा

थे, ने अनेक विशालकाय मन्दिरों का निर्माण कराया परन्तु फिर भी मूर्तिकला व शिल्पकला अपने अस्तित्व को खोती जा रही थी। 19 वीं शताब्दी में एक बार फिर यूरोपीय कला से प्रेरणा लेकर मूर्तिकला अपने अस्तित्व में आयी। बम्बई मूर्तिकला का प्रमुख केन्द्र रहा है। 20 वीं शताब्दी के आरम्भिक 30 वर्षों तक यह स्थान इस कला का प्रधान केन्द्र रहा। आधुनिक मूर्तिकला की शुरूआत रौदा से की जा सकती है और डेविड स्मिथ सरीखे मूर्तिशिल्पियों तक पहुँचकर मूर्तिशिल्प की अपनी भाषा और अपनी समस्याओं से परिचित हुआ जा सकता है। कुछ कला आन्दोलनो ने मूर्तिशिल्प को अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय किया (पॉपकला, काइनेटिक कला वगैरह) पर ब्रांकुसी काल्डर, गाबो, जेकब एपस्टाइन, गोंसालेस, जिआकोमेतो, हेनरी मूर, बार्बरा हेपवर्थ, ओल्डेल वर्ग, डेविड स्मिथ सरीखे दर्जन भर नामों की मदद से आधुनिक मूर्तिशिल्प का एक समानान्तर इतिहास भी बनाया जा सकता है।[11] आधुनिक भारतीय मूर्तिकला पर फ्रांसीसी सुप्रसिद्ध मूर्तिकार रोंदा की कला का बहुत प्रभाव पड़ा। रोंदा की प्रतिमाओं में मार्मिकता की अनुभूति बहुत गहरी है। इससे प्रभावित होने वाले भारतीय मूर्तिकारों मे फणीन्द्रनाथ बोस तथा देवी प्रसाद राय चौधरी के नाम प्रमुख है। इन कलाकारों ने भारत की आधुनिक भावनाओं जैसे देश भक्ति, समाजवाद, श्रम की महत्ता आदि से सम्बन्धित अनेक मूर्तियों की रचना की है जिनमें एक से अधिक मानवाकृतियों का समूह दिखाया गया है। "श्रम की विजय" तथा "शहीद स्मारक" इस प्रकार की प्रसिद्ध कृतियाँ है जिनमें भारतीयता देशभक्ति आदि की भावनाएं है तथा तकनीकी दृष्टि से गति मुद्राओं और समूह योजना का प्रभावशाली रूप दिखाई देता है।[12]

निष्कर्ष– सार रूप में ,भारत में वास्तु शिल्प, कला एवं शिल्प व मूर्तिकला की जड़ें भारतीय सभ्यता के इतिहास मे बहुत ही दूर व गहराई के साथ जकड़ी हुई दिखाई देती है। इसमें कोई संशय नही है कि भारतीय मूर्तिकला प्रारम्भ से ही यथार्थ रूप लिए हुए है। भारतीय मूर्तिकला के विषय में अगर बात की जाए तो इसमें कलाकार ने पेड़–पौधे, जीव–जन्तुओ से लेकर असंख्य देवी–देवताओ का चित्रण किया है। सिन्धु धाटी सभ्यता के मोहनजोदड़ों में बड़े बड़े जल कुण्ड व वहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ इसका अच्छा उदहारण है। इनके अतिरिक्त कांचीपुरम, मदुरै, रामेश्वरम आदि कला के जीते जागते उदहारण है। यही नही मध्य प्रदेश के खुजराहों के मन्दिर भारतीय वास्तुकला का अनुपम उदहारण है आकार सौन्दर्य एवं उत्कीर्ण मूर्तियों की प्रचुरता के कारण वे भारत के समान रूप अन्य सब स्मारकों में अद्वितीय है प्रायः सभी मन्दिर केन नदी के पूर्वी तट पर स्थित पन्ना की खानों में से उत्खात मटियाले बलुए पत्थर में बनें है। इमारत को दृढ़ बनाने के लिए लोहे के संधरो का प्रचुर प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त उड़ीसा का सूर्य मन्दिर भी इस कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इस प्रकार भारतीय कला अपने आप मे बहुत कुछ समेटे हुए है। इसनें कला के ऐसे उत्कृष्ट नमूने दिये है जिनके विषय मे चर्चा मात्र से ही मन नवीन उमंगो व नवीन विचारों से भर जाता है। वास्तव मे देखने की ललक दर्शक मे और अधिक बढ़ जाती है। इतिहास के कला खण्ड व मूर्तिशिल्प समृद्ध साक्ष्य की ओर संकेत करते है भारतीय मूर्तिशिल्प कला को न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में उच्चतम स्थान प्राप्त है।

संदर्भ–सूची

1½*कला चिन्तन* –कला त्रैमासिक से श्रेष्ठ रचनाओं का संकलन, लखनऊ : ललित कला अकादमी प्रकाशन पृष्ठ–**54**

2) *कला चिन्तन* –कला त्रैमासिक से श्रेष्ठ रचनाओं का संकलन, लखनऊ : ललित कला अकादमी प्रकाशन, पृष्ठ–**207**

3) *कला चिन्तन* –कला त्रैमासिक से श्रेष्ठ रचनाओं का संकलन, लखनऊ : ललित कला अकादमी प्रकाशन, पृष्ठ–**208**

4) अग्रवाल, डॉ0 गिर्राज किशोर – *भारतीय मूर्तिकला का परिचय,* ललित कला प्रकाशन अलीगढ, 1985 पृष्ठ–**10**

5) *कला इतिहास*– पृष्ठ–**9**

6) अग्रवाल, डॉ0 गिर्राज किशोर – *भारतीय मूर्तिकला का परिचय,* ललित कला प्रकाशन, अलीगढ,1985 पृष्ठ–**22**

7) श्रेत्रिय, डॉ0 शुकदेव – *भारतीय कला गौरव,* पृष्ठ–**42**

8) दास, रायकृष्ण– *भारतीय मूर्तिकला,* पृष्ठ–**92**

9) अग्रवाल, डॉ0 गिर्राज किशोर –*भारतीय मूर्तिकला का परिचय,* ललित कला प्रकाशन, अलीगढ,1985 पृष्ठ–**39**

10) श्रेत्रिय, डॉ0 शुकदेव – *भारतीय कला गौरव,* पृष्ठ–**54**

11) भारद्वाज, विनोद – *आधुनिक कला कोष,* सचिन प्रकाशन, प्रथम सस्करण 1959 पृष्ठ–**65**

12) अग्रवाल, डॉ0 गिर्राज किशोर – *भारतीय मूर्तिकला का परिचय,* ललित कला प्रकाशन, अलीगढ,1985 पृष्ठ–**83–84**

भारतीय मूर्तिशिल्प इतिहास : एक दृष्टि